पेंटिंग अकेली है

चित्रा मुद्गल

पेंटिंग अकेली है

किस सिरे से शुरू करूँ

बोलोगी ही नहीं तुम तो चलो मैं खुद ही सोचती हूँ।

अपना गिलास हाथ में थामे हुए वह अपनी लंबी खुली बैठक के पूर्वी छोर पर, जहाँ से उनके सोने के कमरे का सँकरा सहन शुरू होता है - उस ओर चल दिए।

सहन और सोने के कमरे में प्रवेश करने से पहले, फर्श का एक आयताकार खुला टुकड़ा अपना अलग वजूद लिए उस घर में अपनी उपस्थिति विशेष रूप से दर्ज करता है। उनके सोने के कमरे के ठीक सामने एक और सोने का कमरा है, किसका? उसका नाम बताना जरूरी नहीं है। जिसका नाम बताना जरूरी नहीं है, उसकी एक गहरी इच्छा को प्रकट करना जरूरी है। उसकी इच्छा थी कि उनके और उसके कमरे के बीच गुलाब का एक पौधा लगाया जाना जरूरी है।

आयताकार फर्श के उस खुले टुकड़े की बाईं दीवार से लगा हुआ या कह सकते हैं दीवार में लगभग धँसा हुआ-सा ऊँचा-चौड़ा कलात्मक एक डिवाइडर है जिसकी ऊपरी सेल्फ में किताबें करीने से लगी हुई हैं - कभी निकालकर खोली न गई हों, इतनी बेदाग। उसी डिवाइडर के निचले हिस्से में उनका छोटा-सा बार बना हुआ है।

बार के निकट पहुँचकर वे थमक से गए। उनकी नजर सोने के दूसरे कमरे के पर्दों को टोहने लगी।

खिले गुलाबों वाला पौधा कहाँ है उन दो कमरों के बीच! लगाने की खूबसूरत कोशिश तो की थी उन्होंने। बहुत दिनों तक उन्हें लगता भी रहा कि उनकी वह कोशिश व्यर्थ नहीं गई।

हाथ में थमे गिलास को वह आहिस्ता से अपने चेहरे की परिधि में ले आए। पैग का आखिरी घूँट क्रिस्टल के गिलास से आलिंगित कत्थई गारनेट की पिघली किरचों-सा चकमका रहा था।

गिलास उनकी उँगलियों में थिरकने लगा। चकमकाहट नाच रही है। चौंधियाती। उन्हें आखिरी घूँट घूँटना है। आखिरी पैग का नहीं। पैग का आखिरी घूँट उन्हें अजीज है। तृप्ति के पूरक सा। नहीं, शायद तृप्ति को उकसाने वाला। उसकी तरस को जगाने वाला। जे - 'जे' क्या वही थी!

समझ नहीं आता या समझ ने उनसे दूरी बना ली है।

'बार' से उन्होंने 'रम' की बोतल उठा ली। नया पैग बनाना है। बर्फ के गोल-मटोल कंचों से उसे ऊपर तक भर देना है। पहला घूँट भरने से पूर्व बर्फ के शिखर को 'रम' में डूबते-पिघलते, बदलते हुए महसूस करना है। चुनौती देते महसूस करना है। महसूस करना है - कितना ठंडापन है उसमें। कब तक वह 'रम' की आँच से स्वयं को सुरक्षित रख सकते हैं।

गिलास अब फिर उनके चेहरे की सीध में है। 'आँखें टिकी हुई हैं टकटकी बाँधे गिलास की दीवारों से। गिलास की दीवारों के आर-पार जाया जा सकता है, नहीं। दीवारें सतर्क हैं। भीतर झाँकने की अनुमति तो देती हैं मगर अपने पार नहीं जाने देतीं। सेंध अधूरी ही रहती है। सब कुछ जान लेने, थाह पा लेने की मंशा को परे ढकेलती।

पहला घूँट भरा नहीं गया है। हड़बड़ी नहीं है। पहला घूँट पर्याप्त होना चाहिए। पर्याप्त आराम की तरह। छोटा घूँट भीतर हो रही बर्फबारी से नहीं जूझ सकता।

बैठक का छोर दूर है। सीधे कदम नहीं भर पाते। ठिठकना, ठहरना पड़ता है। पड़ाव से जीवन के अटकाव विवश करते हैं। अटकाव को टाल पाना अपने हाथ में होता है क्या? जो उनके हाथ में हो सकता है, उसे टालना?

भारी-भरकम गुदगुदे सोफों के मध्य पसरी लंबी तिपाई सरहद की ऊँची बाड़-सी कंटीली हो उठती है।

"रुको राज - घूँट भरने दो मुझे अपने गिलास से।"

"गिलास बना दूँ तुम्हारा?"

"भद्दा मजाक मत करो - मैं पीती हूँ?"

"घूँट भरना चाहती हो मेरे गिलास से - जाहिर है, चाय का घूँट तो भरोगी नहीं तुम।"

"मेरे लिए 'रम' का घूँट चाय के घूँट में तब्दील हो जाएगा, जब मैं घूँटूँगी उसे।"

"सच कहूँ! कुछ भी पी लें हम लेकिन निर्भर करता है कि हम क्या पीना चाहते हैं और - किस रूप में पीना चाहते हैं।"

"अमृत, विष का प्याला वैसे ही थोड़े बन गया होगा।"

"ब्लडी इंडियन खोखला सोच। 'जे' होती तो उसका जवाब होता, जो सच होता, 'हाँअ, मैं पीना चाहती हूँ।"

उस पर उनकी टिकी आँखों में उपहास ने अट्टहास भरा। खामोश अट्टहास।

हाय! क्या क्या कह गए वे! चोट उसे पहुँचाना चाहते थे या खुद को कोंचना कि अपने दिल-दिमाग पर पूरी तरह भरोसा न किया करें। वह भी गलत हो सकते हैं निर्णय लेने में।

शीत-तापरहित घर-घर होते हैं?

इन घरों में मौसम के उतार-चढ़ाव कोई दस्तक क्यों नहीं देते?

वह स्वयं से सवाल कर रही थी बुदबुदाते हुए या उनसे।

बुदबुदाना उनको सुनाने के लिए नहीं था शायद। होता तो बुदबुदाती नहीं। 'जे' की आवाज चीत्कारों में बदलती हुई उन्हें चेतावनी-सी देने लगती कि वह अपने घर की दीवारों को जितनी जल्दी हो सके, साउंड प्रूफ करवा लें।

उसके नंबर डायल किए बिना वहाँ की चौकन्नी पुलिस तक पहुँच जाए।

संयत दिखे वे वह ऊपर से मगर भीतर से कड़वा आए थे। उन्हें लगा था गतिमान वक्त के साथ जगह पर से न हिलने वाले आदमी का विभ्रम प्रलाप है उसकी यह बुदबुदाहट।

"छत तुड़वा दें इस घर की? मौसम टपक पड़ेंगे। भूखे-नंगे। बर्फ की आसमान से रपटती सिल्लियाँ घर में अपने घरौंदे जितने ऊँचे और नुकीले बनाना चाहेंगी, तबीयत से बना लेंगी।"

"तुम्हारे बगल से सटी उनकी कँपकँपाहट दूर होने से रही। तुम खुश होगी, मौसम ने घर में दस्तक दी है।"

"बरसते मेघों का पानी जाया न हो, इसके लिए शहर भर के बाथ टबों को घर में लाकर ठूँस देना होगा। जलक्रीड़ा करने में तुम्हें घोर आनंद आएगा। मौसम ने जो घर में दस्तक दी है।"

"ऊँचे दरख्तों के बुढ़ाए पत्ते हवा की तेजी न सह पाने के चलते टूट-टूट कमरों में पुआल से बिछ जाएँगे। तुम शायद तभी सो पाओगी चैन से। खटियों पर सोने की आदत जो पड़ी हुई है तुम्हारी। गाँव-देहात यहाँ भी चाहिए तुम्हें, वाशिंगटन डी-सी के इस उपनगर में। यूनिवर्सिटी टावर्स और यूनिवर्सिटी गुलेवाड़ की गगनचुंबी इमारतों की छाँव में।"

"इतने दिनों तक खास के साथ रहते हुए आम भी खास हो जाते हैं

लेकिन - तुम्हें लग रहा है खास आम में क्यों नहीं बदल सकता।"

बुदबुदा रहे हैं वह - किससे? किसे सुना रहे हैं। घर में कोई सुनने वाला है नहीं।

आधी बोतल 'रम' इस हाल में नहीं पहुँचा सकती उन्हें कि वह खुद बोलें और खुद ही सुनें।

छिपाया नहीं था उन्होंने।

बताया था दिल्ली के जनपथ होटल में। 'जे' के तीन बच्चे थे। तीनों को वह अपने साथ लेकर आई थी। दो बेटे और एक बेटी। तेरह वर्ष में तीन तलाक 'जे' के खाते में दर्ज थे। दो बड़े फ्लैटों की मालकिन थी। जीवन पर्यंत कमाती, तब भी अपने बूते दो बड़े शहरों में बड़े फ्लैट बना पाना उसके लिए मुश्किल था। औरत की योनि और कोख ने उसे इतनी बड़ी संपत्ति का हकदार बनाया था। बस! हमारे यहाँ की मूर्ख औरतें इस गुर से नावाकिफ हैं या उनमें साहस की कमी है।

शायद इसी वजह से हिंदुस्तानी मर्द अपना खेल बनाए हुए हैं।

इस इलाके में इतनी बर्फबारी सालों का फासला तय करके होती है। होती है तो एक इंद्रजाल-सा रचती है।

बैठक की पौनी दीवार घेरे हुए काँच की खिड़की के निकट खिंच आते हैं और भारी-भरकम पर्दा सरका कर उसकी चौड़ी सांध से उस पार ऊँचे दरख्तों पर झूलती बर्फ को छूने की कोशिश करते हैं।

इंद्रजाल को छूना मुमकिन नहीं।

काँच बेहद ठंडा है। खून जमा देने वाली हद को छूता।

झुरझुरी-सी चिहुँकी थी देह में।

गिलास होंठों से आ सटा। देह के तापमान को मौसम के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता।

दो दीर्घ घूँट भरे उन्होंने। स्वयं के अनुशासन के विपरीत। ठीक होने तक ठीक हो गए हैं, महसूस करना जरूरी होता है।

भीतर उनके नियंत्रण में फिर भी नहीं आता। पसरा रहता है वहाँ उचाट किए रहने वाला सघन बियाबान। ऊपर वह उसे प्रभावी नहीं होने देते।

किसी ने कुछ कहा! नहीं तो! यहाँ कौन है जो कुछ कहेगा?

वह गलत नहीं हो सकते। उनकी सतर्क चहल-कदमी तेज हो गई।

आभास हुआ। भीतर इस समय कोई बेवक्त खुसफुसा रहा। क्षोभ में डूबी खुसफुसाहट।

उस कील-सी ठुकती जिसे रह-रह कर ठोंका जाता है हथौड़े से।

सप्ताहांत में उन बच्चों के पिता आते थे। किसम-किसम के पिता। किसिम-किसिम के प्रलोभनों के साथ!

'जे' एक सुघड़ जननी की भाँति उनकी औलादों को सजा-धजा बारी-बारी से उनके हाथों में सौंप देती। मासूमों को पहले से ही अनुकूलित करती। वह एक सुनहला समय बिताने जा रहे हैं अपने पिताओं के साथ। पति वह अच्छे नहीं रहे तो क्या। पिता वह बहुत अच्छे हैं। समझदार हैं। अब तो उनके पिता उसके दोस्त हैं। उनके साथ सप्ताहांत मनाने के लिए उन्होंने फलाँ पिकनिक स्पॉट चुना है। जम के सप्ताहांत मनाना तुम उनके साथ। पसंद का भोजन करना। चीजें खरीदना। पिता अपने बच्चों को सब कुछ दिला सकता है। संकोच नहीं करना। माँ की बुराई नहीं करना। नहीं करोगे न!

लंगूरों की ललाई से अरुणिम, गदबदे खिलखिलाते बच्चे। उस रोज विशेष। दरवाजे की घंटी बजने की प्रतीक्षा में अधीर! छटपटाते। विडंबना से अनभिज्ञ।

आखिर हफ्ते में एक बार ही क्यों मिल सकते हैं वह अपने पिता से।

घर इतना गर्म क्यों हो रहा -

इतना उन्हें उकसा रहा। ओवरकोट और गम बूट पहन गिलास हाथ में थामे वह घर से बाहर निकाल दें। उस इंद्रजाल को छू आए जिसकी माया में पूरा इलाका आकंठ डूबा हुआ है।

"कहाँ चल दिए राज साब, हम भी चल सकते हैं?"

"ओवरकोट पहनना होगा। ठंडे लोग ठंडी का सामना नहीं कर सकते।"

"पहन लेंगे।"

उनके कहे गए वाक्य का पिछला हिस्सा सुनाई नहीं दिया उसे या सुनकर अनसुना किया गया, भाँप नहीं पाए।

"गम बूट तो है नहीं तुम्हारे पास।"

"जूतों से काम चला लेंगे। अभी आए। ऐसी बर्फ पहली बार देखी। न ले जाना चाहो तो बात और है। पीछे-पीछे हो लेंगे हम।"

ललक छू गई। जिद में आँच थी। महसूस हुई उन्हें। आँच दौड़ने लगी शिराओं में। आँच को अपने कमरे की ओर मुड़ने नहीं दिया उन्होंने।

"चलो छोड़ो ओवर कोट - "

हैरत से भौंहें सिकुड़ी उसकी।

"आओ, तुम मेरे ओवरकोट में समा जाओ।"

"मजाक छोड़ो।"

"मजाक नहीं कर रहा मैं।"

"इतने जीरो साइज नहीं हैं हम?"

"हम बताएँगे, तुम हो या नहीं।"

उस रोज कुछ हो जाता तो शायद - गुलाब उग आता उनके दरमियान।

इधर 'जे' से अलग होने और उससे जुड़ने के उपरांत लगने लगा था, बर्फ गिर रही हो तो ओवरकोट और गम बूट में, दस्ताने पहने एक नन्ही हथेली उनके हाथ में हो, बर्फ की चादर पर अपने नन्हे गम बूटों के निशान छोड़ती हुई।

गुंजाइश ने अभी उनसे पल्ला नहीं छुड़ाया है।

कई बार फोन कर चुके हैं उसे बस! फोन पर जनानीनुमा सिसकियाँ नहीं भाती उन्हें।

'जे', जननी बनने को राजी थी।

उन्होंने 'जे' से बच्चा नहीं चाहा।

नहीं चाहते थे कि उन तीनों बच्चों की भीड़ में उनका मासूम भी शामिल हो और उन्हीं की भाँति 'जे' उसे सप्ताहांत में अपने पिता से मिलने के लिए सजाए-धजाए। उनका बेटा या बेटी उनका इंतजार करे कि कब उसके पापा आएँ और वह उनसे मिल सके। उनके साथ रह सके। उस मजबूरी का सामना करे जिसे साथ लेकर वह पैदा नहीं हुआ। मजबूरी जो उसे बेदर्दी से सौंप दी गई। बिना उसके मन को जाने-समझे। एक तरफ

बच्चों के बचपन को बचाए रखने की ताकीदें तो दूसरी ओर उन्हें समय से पहले समझदार बनाने के दबाव।

बहुत बाद में महसूस हुआ था उन्हें। एक-दूसरे की शक्ल न देखने की विमुखता के बावजूद बिस्तर से वे कभी विमुख नहीं हुए।

मुआवजा तगड़ा उनसे भी वसूला गया। पिता नहीं बने 'जे' से तो मुआवजे में खासी रियायत मिली।

उसने पूछा था खुलकर दिल्ली से लगे अपने कस्बेनुमा नगर में लौट जाने के बाद।

"हममें और 'जे' में क्या अंतर है?"

"मतलब नहीं समझा मैं तुम्हारा?"

"मतलब, जे के साथ आपने तीन साल गुजारे। हमारे साथ दूसरा साल पूरा होना मुश्किल हो गया। करवाचौथ की दूसरी मेहँदी हाथों से नहीं उतर पाई।"

सवाल उन्हें संकोच में डाल गया। उससे उम्मीद जो नहीं थी।

"जवाब सुनना चाहोगी?"

"सुनने का साहस जुटा लिया है।"

उसने यह भी कहा। वह उनके पास थी तो उनसे पूछने का साहस नहीं जुटा पाई थी। इसका मतलब यह नहीं कि उस समय उसके मन में यह प्रश्न नहीं अकुलाया। कमी थी तो शायद साहस की। वह साहस जो उन्हें कठघरे में ले सके। पत्नी होकर उसे जानने का अधिकार है। उस सवाल को पूछने का साहस सँजोने में उसे महीनों लग गए।

"पहले शायद मैं तुम्हें जवाब न दे पाता। लगता था मुझे - अरसा साथ रहने के बावजूद, जिस परस्परता की दरकार होती है पति-पत्नी के संबंधों में, पैदा नहीं कर पाए हम अपने बीच।"

"लगा और कितना समय चाहिए तुम्हें?"

"खुद को परखने की जरूरत नहीं समझी आपने?"

वह रुआँसा मौन हो गए थे। स्पष्टता में कठोर नहीं होना चाहते थे।

"सुनो! 'जे' को जगाना नहीं पड़ता था और तुम - "

"मैं क्या?"

"तुम जगाने की कोशिश के बावजूद, जाग नहीं पाती थीं।"

उस ओर पसर आए सन्नाटे ने उन्हें विचलित किया। कहीं फोन रख न दिया जाए। फोन रखा नहीं गया। बोलों ने चुप्पी तोड़ी।

"आपने हमें स्वयं पसंद किया था - "

"किया था! थोपी नहीं गई थीं तुम हम पर। हम भी पटरी बदल कर देखना चाहते थे।"

"पटरी - "

आशय गलत शब्द के कंधे पर सवार होते ही कितना ओछा हो उठता है। कहकर वह ग्लानि से भर उठे।

"देखो, जिंदगी को विकल्प देना चाहिए। जरूरत महसूस हो रही थी हमें।"

उन्हें महसूस हुआ। व्याप गई असहजता को सहज करने की जरूरत है। संवाद गलत नोट पर ले जाकर समाप्त करना नई उद्विग्नता को आमंत्रित करना होगा, बेमतलब।

अगले ही पल पूछा उन्होंने कि वह पिछली बातचीत में बता रही थी कि उसकी पुरानी नौकरी शायद उसे फिर मिल जाए वरना वह यह भी कर सकती है कि कुछ समय के लिए अम्मा के पास जाकर हाथरस रह आए। बाबूजी के न रहने के उपरांत अम्मा बहुत अकेला महसूस कर रही हैं। गठिया परेशान कर रही है उन्हें।

"नहीं, वहाँ नहीं जाना चाहती?" उसका स्वर दृढ़ था। असमंजस से दूर।

"तब?"

"दिसंबर में आप आ रहे हैं न! अम्मा ने बताया था फोन पर।"

"आ रहा हूँ, तुम्हें अभी बताने जा ही रहा था।"

"तभी आपसे लिखा-पढ़ी करके मुक्त होना चाहूँगी।"

"क्यों?"

"नौकरी मिलते ही जिंदगी की नई पारी शुरू करूँगी।"

"कैसे?"

"वैसे ही, जैसे 'जे' शुरू कर लेती है।"

अनेक बार की तरह वह फिर से डिवाइडर के करीब आ गए अपने खाली हुए गिलास के साथ।

बर्फ के सफेद कंचे उतर रहे हैं 'रम' की तरलता में उसी तरह।

मगर उसी तरह अगली कड़ियाँ नहीं घट रहीं। आँखों के सामने गिलास थिरकाने के बावजूद आँखें थिरकने पर निर्निमेष गड़ाए रखने के बावजूद बर्फ इतनी तेजी से क्यों पिघल रही है जितनी तेजी से इन दिनों नहीं पिघलती?

एक गहन उच्छवास फूटता है उनके कंठ से। कत्थई रम सुनहली रंगत में बदलने की बजाय जमे खून-सी करछल क्यों हो रही? वह गिलास को ऊँचा उठाकर रोशनी के दायरे में ले जाते हैं। सुनहरी चकमक फिर भी नहीं फूट रही।

इस रात के ठीक तीन दिन बाद उन्हें दिल्ली पहुँचना है।

वे अपने से पूछते हैं, क्या वे दिल्ली पहुँचना चाहते हैं? एक निर्णय जो वहाँ उनका इंतजार कर रहा है, उसका सामना करना चाहते हैं -

https://www.hindiadda.com/painting-akeli-hai/